Gyanvividha, Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026 : PP-353-358

ज्ञानविविधा

कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी-समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका

ISSN : 3048-4537(Online)
3049-2327(Print)
IIFS Impact Factor-4.5
Vol.-3; Issue-1 (Jan.-March) 2026
Page No.- 353-358
©2026 Gyanvividha
https://journal.gyanvividha.com

Author's :

डॉ. गुलाब सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग,
राम सकल सिंह साइंस कालेज,
डुमरा, सीतामढ़ी, बिहार।

Corresponding Author :

डॉ. गुलाब सिंह

असिस्टेंट प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग,
राम सकल सिंह साइंस कालेज,
डुमरा, सीतामढ़ी, बिहार।

न्याय-दर्शन में 'अनुमान' की तर्क-प्रक्रिया और आधुनिक तर्क-त्रुटियाँ : हेत्वाभास के आलोक में आलोचनात्मक विश्लेषण

सारांश : भारतीय दर्शन की आस्तिक परंपरा में न्याय-दर्शन एक अत्यंत विशिष्ट एवं प्रामाणिक स्थान रखता है, जो अपनी सूक्ष्म ज्ञानमीमांसा तथा तर्कशास्त्र के लिए विश्व-प्रसिद्ध है। महर्षि अक्षपाद गौतम द्वारा प्रणीत 'न्यायसूत्र' पर आधारित यह दार्शनिक प्रणाली सत्य की खोज हेतु प्रमाणों की एक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित पद्धति प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत शोध-पत्र न्याय-दर्शन की केन्द्रीय अवधारणा 'अनुमान' की तार्किक प्रक्रिया तथा उसके संभावित दोषों-'हेत्वाभास' का गहन दार्शनिक विश्लेषण करता है।

शोध की मुख्य उपलब्धि आधुनिक पाश्चात्य अरस्तूवादी तर्कशास्त्र तथा समकालीन तर्क-त्रुटियों के साथ न्याय के हेत्वाभासों का आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक अध्ययन है। जहाँ पाश्चात्य तर्कशास्त्र मुख्यतः आकारिक एवं सैद्धांतिक वैधता पर केंद्रित रहकर शुद्ध बौद्धिक अभ्यास तक सीमित है, वहीं न्याय-दर्शन निगमन एवं आगमन का एक अनूठा अनुभवजन्य समन्वय प्रस्तुत करता है। इसकी अंतिम प्रज्ञा, मात्र बौद्धिक विलास नहीं, अपितु 'निःश्रेयस' अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति है, जिसमें तर्क साधनमात्र नहीं, प्रत्युत मुक्ति का साधन बन जाता है।

ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन न्याय से नव्य-न्याय तक की यात्रा का यह अध्ययन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि न्याय की तार्किक संरचना आज के कृत्रिम बुद्धिमत्ता(Artificial Intelligence), डिजिटल तर्क-प्रणाली तथा आधुनिक न्यायशास्त्र के युग में भी पूर्णतः प्रासंगिक एवं उपयोगी है। इस प्रकार प्रस्तुत शोध न केवल भारतीय तर्क-परंपरा की गहनता को पुनः स्थापित करता है, अपितु पूर्व-पाश्चात्य तार्किक संवाद की एक नई संभावना को भी उद्घाटित करता है।

कूट शब्द : न्याय-दर्शन, अनुमान, हेत्वाभास, व्याप्ति, पंचावयव, आधुनिक तर्क-त्रुटियाँ, नव्य-न्याय, पाश्चात्य तर्कशास्त्र।

1. प्रस्तावना : न्याय-दर्शन का ऐतिहासिक एवं दार्शनिक आधार :

भारतीय दार्शनिक चिंतन में न्याय-दर्शन को 'आन्वीक्षिकी'(तर्कविद्या), 'प्रमाणशास्त्र', और 'हेतुविद्या' के नाम से जाना जाता है । इस दर्शन के आदि प्रवर्तक महर्षि अक्षपाद गौतम(लगभग छठी से दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व) माने जाते हैं, जिन्होंने 'न्यायसूत्र' की रचना कर तर्कशास्त्र को एक व्यवस्थित और वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया है(विद्याभूषण, 1921) । न्याय का मूल अर्थ है—वह साधन जिसके द्वारा किसी विवक्षित अर्थ या सिद्धांत की सत्यता तक पहुँचा जा सके । ईसा की चौथी शताब्दी में आचार्य वात्स्यायन ने 'न्यायभाष्य' में इसे परिभाषित करते हुए अत्यंत सटीक शब्दों में कहा है: *"प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः"* अर्थात् प्रमाणों के माध्यम से किसी विषय की युक्तिसंगत परीक्षा करना ही न्याय है(वात्स्यायन, पृष्ठ 45) । यह केवल सैद्धांतिक चिंतन नहीं है, बल्कि सत्य को असत्य से अलग करने की एक व्यावहारिक पद्धति है ।

न्याय-दर्शन का अंतिम उद्देश्य 'निःश्रेयस'(मोक्ष या परम कल्याण) की प्राप्ति है । महर्षि गौतम ने न्यायसूत्र के प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में ही सोलह पदार्थों का उल्लेख किया है, जिनके तत्त्वज्ञान से मुक्ति संभव है । यह मूल उद्धरण इस प्रकार है: *"प्रमाण-प्रमेय-संशय-प्रयोजन-दृष्टान्त-सिद्धान्त-अवयव-तर्क-निर्णय-वाद-जल्प-वितण्डा-हेत्वाभास-छल-जाति-निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः"*(गौतम, 1.1.1) । इन सोलह पदार्थों में 'प्रमाण'(ज्ञान प्राप्ति के साधन) और 'हेत्वाभास'(तर्क-दोष) का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है । न्याय दर्शन चार प्रमाणों को स्वीकार करता है: प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, और शब्द(शास्त्री, पृष्ठ 45) । डॉ. एस. राधाकृष्णन के अनुसार, भारतीय दर्शन का यह तार्किक दृष्टिकोण इस भ्रांति का खंडन करता है कि यहाँ का चिंतन केवल अंधविश्वास या रहस्यवाद पर आधारित है; इसके विपरीत यह वैज्ञानिक परीक्षण और विशुद्ध तर्क-संगतता पर अवलंबित है(राधाकृष्णन, 2015) ।

2. न्याय-दर्शन में 'अनुमान' की तर्क-प्रक्रिया: यथार्थ ज्ञान का साधन : ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में 'अनुमान' प्रत्यक्ष के पश्चात् उत्पन्न होने वाला ज्ञान है, जिसे न्यायसूत्र में *"तत्पूर्वकम् अनुमानम्"* (प्रत्यक्ष पर आधारित) कहा गया है । यह वह संज्ञानात्मक प्रक्रिया है जिसमें किसी ज्ञात 'लिंग'(हेतु या कारण) के माध्यम से किसी अज्ञात 'साध्य' का प्रामाणिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है(शर्मा, 1973) । अनुमान की यह प्रक्रिया भारतीय तर्कशास्त्र का मेरुदंड है, जो मानव बुद्धि को अज्ञात रहस्यों को भेदने की क्षमता प्रदान करती है ।

अनुमान की प्रक्रिया में मुख्य रूप से तीन पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता है, जो तर्क की पूरी इमारत को सँभालते हैं- पक्ष, साध्य और हेतु । 'पक्ष' वह आश्रय या विषय है जिसमें किसी वस्तु के होने का अनुमान लगाया जाता है, जैसे—पर्वत । 'साध्य' वह वस्तु है जिसे सिद्ध करना अभीष्ट है, जैसे—अग्नि । 'हेतु' या लिंग वह साधन या चिह्न है, जिसके आधार पर साध्य को सिद्ध किया जाता है, जैसे—धुआँ(धिलेबन और थिरुमल, 2019) । इन तीनों के पारस्परिक संबंध से ही अनुमान की तार्किक निष्पत्ति होती है।

अनुमान का वास्तविक प्राण 'व्याप्ति' है। प्रसिद्ध समकालीन दार्शनिक बी.के.मतिलाल अपनी पुस्तक *द कैरेक्टर ऑफ लॉजिक इन इंडिया* में स्पष्ट करते हैं कि व्याप्ति, हेतु और साध्य के बीच का वह अनिवार्य, सार्वभौमिक और अनुभवजन्य संबंध है जो कभी खंडित नहीं होता(मतिलाल,1998)। जहाँ-जहाँ हेतु (धुआँ) उपस्थित है, वहाँ-वहाँ साध्य (अग्नि) अवश्य होगा; इस नियम के बिना कोई भी अनुमान तार्किक रूप से वैध नहीं माना जा सकता । व्याप्ति की स्थापना केवल बौद्धिक कल्पना नहीं है, बल्कि यह अबाधित अनुभव पर आधारित होती है(बाला, 2026)।

न्याय-दर्शन में जब किसी सत्य को स्वयं समझकर दूसरों को समझाने(परार्थानुमान) का प्रयास किया जाता है, तो इसके लिए एक विशिष्ट न्याय-वाक्य प्रणाली का प्रयोग होता है, जिसे 'पंचावयव' कहा जाता है । इसमें सर्वप्रथम 'प्रतिज्ञा' आती है, जो सिद्ध किए जाने वाले कथन का निर्देश करती है(उदा0- राम मरणशील है) । इसके पश्चात् 'हेतु' आता है, जो प्रतिज्ञा का तार्किक कारण प्रस्तुत करता है(उदा0- क्योंकि वह मनुष्य है) । तृतीय अवयव 'उदाहरण' है, जो व्याप्ति को सार्वभौमिक दृष्टांत के साथ स्पष्ट करता है(उदा0- सभी मनुष्य मरणशील हैं, जैसे—मध्व,

रामानुज) । चतुर्थ अवयव 'उपनय' है, जो उदाहरण के आधार पर हेतु को वर्तमान पक्ष में लागू करता है(उदा0- राम भी एक मनुष्य है) और अंततः 'निगमन' आता है, जो उपर्युक्त चारों के आधार पर अंतिम अकाट्य निष्कर्ष प्रस्तुत करता है(उदा0- अतः राम मरणशील है) (झा, 1999) । यह पंचावयव पद्धति आगमन और निगमन का सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक समन्वय है ।

3. हेत्वाभास का तात्विक विश्लेषण: तार्किक त्रुटियों का भारतीय दृष्टिकोण : जब तर्क-प्रक्रिया में प्रयुक्त 'हेतु' वास्तविक न होकर केवल हेतु के समान प्रतीत होता है, परंतु तार्किक कसौटी पर उसमें व्याप्ति या पक्षधर्मता का पूर्ण अभाव होता है, तो उसे न्याय-दर्शन में 'हेत्वाभास' कहा जाता है । यह एक अमान्य या दोषपूर्ण कारण है जो सत्य को उद्घाटित करने के बजाय भ्रम या भ्रांति उत्पन्न करता है(पंचानन, 1989) । न्यायसूत्र(1.2.4) में महर्षि गौतम ने मुख्य रूप से पाँच प्रकार के हेत्वाभासों का सूक्ष्म दार्शनिक वर्गीकरण किया है, जो तर्क की शुद्धता बनाए रखने के लिए अनिवार्य हैं(गौतम, 1.2.4)।

सर्वप्रथम, 'सव्यभिचार' या अनैकांतिक हेत्वाभास वह स्थिति है जहाँ हेतु अति-व्यापक हो जाता है । यह तब उत्पन्न होता है जब हेतु केवल साध्य के साथ ही नहीं, बल्कि साध्य के अभाव(विपक्ष) के साथ भी विद्यमान रहता है(भट्ट, 1983) । उदाहरण के लिए, यदि कोई कहे कि "सभी ज्ञेय वस्तुएँ नित्य हैं," तो यहाँ 'ज्ञेय होना'(जाना जा सकना) एक व्यभिचारी हेतु है । ऐसा इसलिए है क्योंकि नित्य वस्तुओं(जैसे आत्मा) के साथ-साथ अनित्य वस्तुओं(जैसे घड़ा) को भी जाना जा सकता है । अतः यह हेतु एक निश्चित साध्य तक नहीं पहुँच पाता(धिलेबन और थिरुमल, 2019) ।

द्वितीय, 'विरुद्ध' हेत्वाभास तब परिलक्षित होता है जब हेतु साध्य की सिद्धि करने के बजाय साध्य के अभाव(विपरीत दिशा) को ही सिद्ध कर दे । उदाहरणस्वरूप, "हवा भारी है क्योंकि वह खाली है ।" यदि कोई वस्तु खाली है, तो वह स्वभावतः भारी नहीं हो सकती । यहाँ हेतु 'खालीपन', साध्य 'भारीपन' का सीधा तार्किक विरोध कर रहा है, जो तर्क को स्वतः निरस्त कर देता है(सिंह, 2015) ।

तृतीय स्थिति 'प्रकरणसम' या 'सत्प्रतिपक्ष' की है । यह तब होता है जब एक अनुमान के हेतु को किसी दूसरे अनुमान के अत्यंत समान बल वाले विरोधी हेतु द्वारा काट दिया जाता है । उदाहरणार्थ, वादी का तर्क है—"शब्द नित्य है क्योंकि वह श्रव्य(सुनाई देने वाला) है ।" वहीं प्रतिवादी का तर्क है—"शब्द अनित्य है क्योंकि वह उत्पन्न होता है ।" यहाँ दोनों हेतु समान रूप से बलवान प्रतीत होते हैं, जिससे सत्य के निर्णय के बजाय संशय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है(तिवारी, 2019) ।

चतुर्थ हेत्वाभास 'साध्यसम' या 'असिद्ध' है । जब हेतु स्वयं असिद्ध हो और उसे साध्य की तरह ही सिद्ध करने की आवश्यकता पड़े, तो तर्क आधारहीन हो जाता है । उदाहरण के लिए, "आकाश-कमल सुगंधित है, क्योंकि वह कमल है ।" इस तर्क में पक्ष 'आकाश-कमल' का कोई वास्तविक या अनुभवजन्य अस्तित्व ही नहीं है(आश्रयासिद्ध), इसलिए इस पर आधारित हेतु स्वतः असिद्ध और भ्रामक हो जाता है(शर्मा, 1973) ।

अंतिम हेत्वाभास 'कालातीत' या 'बाधित' है । जब हेतु द्वारा सिद्ध किए जाने वाले साध्य का अभाव किसी अन्य अधिक बलवान प्रमाण(जैसे प्रत्यक्ष प्रमाण या शब्द प्रमाण) द्वारा पहले ही सिद्ध हो चुका हो, तो उसे बाधित हेत्वाभास कहते हैं । यदि कोई कहे कि "अग्नि ठंडी है, क्योंकि यह एक भौतिक पदार्थ है," तो यहाँ अग्नि का 'ठंडा होना' प्रत्यक्ष प्रमाण(त्वचा के स्पर्श) द्वारा तुरंत बाधित हो जाता है, क्योंकि प्रत्यक्ष अनुभव सिद्ध करता है कि अग्नि गर्म होती है(सिंह, 2015) ।

4. आधुनिक(पाश्चात्य) तर्क-त्रुटियाँ: संरचना और प्रासंगिकता : पाश्चात्य तर्कशास्त्र, जिसका ऐतिहासिक विकास अरस्तू की युक्तियों से लेकर आधुनिक विश्लेषणात्मक दर्शन तक हुआ है, तर्क-त्रुटियों को 'भ्रामक तर्क' की संज्ञा देता

है । अरस्तू के अनुसार भ्रम या तार्किक त्रुटि, "तर्क में एक ऐसी त्रुटि है जो एक तर्क को अमान्य या भ्रामक बनाती है"(कोपी, 2020) । आधुनिक तर्कशास्त्र तर्क-दोषों को उनकी प्रकृति के आधार पर मुख्यतः दो स्पष्ट भागों में विभाजित करता है- आकारिक तर्क-दोष और अनाकारिक तर्क-दोष ।

आकारिक तर्क-दोष वे त्रुटियाँ हैं जो तर्क की तार्किक संरचना में दोष के कारण उत्पन्न होती हैं । निगमनात्मक तर्कों में इनका गहन अध्ययन किया जाता है । इसका एक प्रमुख उदाहरण 'अवितरित मध्यम पद का दोष' है, जो तब होता है जब न्याय-वाक्य का मध्यम पद दोनों आधार-वाक्यों में पूर्णतः वितरित नहीं होता । इसी प्रकार 'हेतु-फल पुष्टिकरण दोष' एक आम आकारिक त्रुटि है, जैसे—"यदि बारिश होती है, तो सड़क गीली होगी । सड़क गीली है, इसलिए बारिश हुई ।" यह संरचनात्मक रूप से अमान्य है क्योंकि सड़क को गीला करने के अन्य कई कारण हो सकते हैं(कोपी, 2020) ।

दूसरी ओर, अनाकारिक तर्क-दोष तर्क की संरचना से नहीं, बल्कि उसकी विषय-वस्तु, भाषा की अनेकार्थकता, और मनोवैज्ञानिक प्रासंगिकता से संबंधित होते हैं । इनमें 'व्यक्ति-केंद्रित कुतर्क' अत्यंत प्रचलित है, जहाँ तार्किक मुद्दे का उत्तर देने के बजाय तर्क प्रस्तुत करने वाले व्यक्ति के चरित्र पर ही अप्रासंगिक हमला कर दिया जाता है(सिंह, 2015) । इसी तरह 'लोकोत्तेजक युक्ति' में यह मान लिया जाता है कि कोई बात केवल इसलिए सत्य है क्योंकि बहुसंख्यक लोग उसे सत्य मानते हैं । 'काकतालीय दोष' में दो घटनाओं के एक साथ या आगे-पीछे होने मात्र से उनके बीच कार्य-कारण संबंध स्थापित कर दिया जाता है, जो वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सर्वथा अनुचित है(कोपी, 2020) ।

5. न्याय-दर्शन और आधुनिक तर्कशास्त्र का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन : भारतीय न्याय-दर्शन और पाश्चात्य तर्कशास्त्र का तुलनात्मक अध्ययन दोनों प्रणालियों की बौद्धिक गहराई और उनके दृष्टिकोण के मूलभूत दार्शनिक अंतरों को उजागर करता है । समकालीन शोधकर्ता डॉ0 मुकुल बाला अपने शोध पत्र *'न्याय लॉजिक एंड वेस्टर्न एपिस्टेमोलॉजी'* में स्पष्ट करती हैं कि जहाँ पाश्चात्य तर्कशास्त्र मुख्यतः तर्क की संरचनात्मक वैधता की जाँच करता है, वहीं न्याय-दर्शन का तर्कशास्त्र सत्यता और उद्देश्यपूर्णता दोनों का गहन अन्वेषण करता है(बाला, 2026)।

तार्किक संरचना को और अधिक स्पष्ट रूप से समझने के लिए दोनों प्रणालियों की न्याय-वाक्य पद्धति की तुलना निम्नलिखित तालिका के द्वारा की जा सकती है-

तुलना का आधार	न्याय-दर्शन(पंचावयव अनुमान)	पाश्चात्य तर्कशास्त्र(अरस्तूवादी त्रि-अवयव)
अवयवों की संख्या	5(प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन)	3(मुख्य आधारवाक्य, गौण आधारवाक्य, निष्कर्ष)
तार्किक प्रकृति	आगमन और निगमन का संश्लेषण	मुख्यतः निगमनात्मक
सत्यता का आधार	अनुभवजन्य और यथार्थवादी; 'उदाहरण' लौकिक सत्य पर आधारित होता है ।	शुद्ध आकारिक; यदि आधारवाक्य असत्य भी हों, तो भी तार्किक रूप वैध हो सकता है ।
अंतिम उद्देश्य	प्रमा (यथार्थ ज्ञान) की प्राप्ति और अंततः अज्ञान व दुखों से मोक्ष ।	कथनों के भाषाई और संरचनात्मक रूपों की तार्किक शुद्धता सुनिश्चित करना ।

तर्क-त्रुटियों के परिप्रेक्ष्य में, भारतीय 'हेत्वाभास' अनिवार्यतः भौतिक और ज्ञानमीमांसीय त्रुटियाँ हैं । नैयायिकों के अनुसार प्रत्येक हेत्वाभास वास्तव में एक भौतिक तर्कदोष है, क्योंकि इसमें मध्यम पद(हेतु) केवल एक

कारण होने का मानसिक भ्रम पैदा करता है, वास्तविक कारण नहीं होता(धिलेबन और थिरुमल, 2019) । पाश्चात्य तर्कशास्त्र का 'अवितरित मध्यम पद' न्याय के 'सव्यभिचार' हेत्वाभास के अत्यंत निकट है । दोनों ही स्थितियों में मध्यम पद अपने प्रमुख पद(साध्य) के साथ एक निश्चित और अव्यभिचारी संबंध स्थापित करने में विफल रहता है । इसी प्रकार, न्याय के 'सत्प्रतिपक्ष' को पाश्चात्य तर्कशास्त्र के 'अवैध प्रमुख/गौण पद' के समतुल्य माना जा सकता है जहाँ आधारवाक्य में पद का पूर्ण वितरण न होने के कारण निष्कर्ष बाधित होता है(धिलेबन और थिरुमल, 2019) ।

अनाकारिक तर्क-दोषों के संदर्भ में न्याय-दर्शन का दृष्टिकोण अद्वितीय है । आधुनिक पाश्चात्य तर्कशास्त्र के अनौपचारिक दोष—जैसे व्यक्ति-परक कुतर्क या विषयांतर कुतर्क को न्याय-दर्शन विशुद्ध ज्ञानमीमांसीय त्रुटि(हेत्वाभास) नहीं मानता । इसके बजाय, इन्हें शास्त्रार्थ या वाद-विवाद के मनोवैज्ञानिक और नैतिक दोष मानकर न्याय-दर्शन के अन्य पदार्थों जैसे 'छल', 'जाति', और 'निग्रहस्थान' के अंतर्गत वर्गीकृत किया जाता है(शास्त्री, 1990) । वादी द्वारा मात्र विजय प्राप्ति के लिए जानबूझकर किए गए शाब्दिक प्रपंच को न्याय में 'जल्प' और 'वितण्डा' कहा जाता है(गौतम, 1.2.20) । यह प्रमाणित करता है कि न्याय-दर्शन सत्यता की परीक्षण पद्धति में अत्यंत कठोर है; तार्किक त्रुटि(हेत्वाभास) तभी मानी जाती है जब 'व्याप्ति' का सार्वभौमिक नियम टूटता है(बाला, 2026) ।

6. नव्य-न्याय का उद्भव: तार्किक विकास का ऐतिहासिक आयाम : न्याय-दर्शन का विकास किसी एक कालखंड में स्थिर नहीं रहा है अपितु ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह निरंतर परिष्कृत होता रहा है । महर्षि अक्षपाद गौतम के 'न्यायसूत्र' से प्रारंभ होकर यह दर्शन वात्स्यायन के 'न्यायभाष्य', उद्योतकर के 'न्यायवार्तिक', और वाचस्पति मिश्र एवं जयंत भट्ट(9वीं शताब्दी) के योगदानों तक विकसित हुआ है । इस प्राचीन युग में दर्शन का झुकाव 'प्रमेय' और ज्ञान के तात्विक स्वरूप पर अधिक था(विद्याभूषण, 1921) ।

परंतु 12वीं-13वीं शताब्दी में मिथिला के महान विद्वान गंगेश उपाध्याय ने अपनी युगांतरकारी रचना 'तत्त्वचिन्तामणि' के माध्यम से 'नव्य-न्याय' की मजबूत नींव रखी । गंगेश उपाध्याय ने दर्शन को प्रमेय-प्रधान से पूर्णतः 'प्रमाण-प्रधान' बना दिया(मोहंती, 1989) । नव्य-न्याय ने तर्क-प्रक्रिया, विशेषकर 'व्याप्ति' और 'हेत्वाभास', को विश्लेषित करने के लिए अत्यंत सूक्ष्म और तकनीकी भाषा का आविष्कार किया । नव्य-न्याय की पारिभाषिक शब्दावली(जैसे अवच्छेदक, अवच्छिन्न, निरुपक) इतनी वैज्ञानिक और सटीक है कि आधुनिक तार्किकों ने इसे 'आधुनिक प्रतीकात्मक तर्कशास्त्र' के समकक्ष और कई मायनों में उससे भी अधिक उन्नत पाया है(मतिलाल, 1998) । गंगेश उपाध्याय और उनके परवर्ती विद्वानों, जैसे विश्वनाथ पंचानन(न्यायसिद्धान्तमुक्तावली), ने असिद्ध, विरुद्ध आदि हेत्वाभासों के अत्यंत जटिल उप-भेद प्रस्तुत किए, जिसने भारतीय तार्किक विमर्श और भाषा-दर्शन को अभूतपूर्व दार्शनिक ऊँचाइयाँ प्रदान की है(पंचानन, 1989) ।

7. समकालीन प्रासंगिकता एवं निष्कर्ष : न्याय-दर्शन केवल प्राचीन भारत का एक पुरातात्विक बौद्धिक अभ्यास नहीं है, बल्कि यह एक जीवंत, प्रासंगिक और अत्यंत व्यावहारिक ज्ञानमीमांसीय प्रणाली है । 'अनुमान' की तर्क-प्रक्रिया और 'हेत्वाभास' के रूप में तार्किक त्रुटियों का वर्गीकरण यह सिद्ध करता है कि भारतीय ऋषियों ने सहस्राब्दियों पूर्व ही तार्किक कठोरता का वह अतुलनीय मानदंड स्थापित कर लिया था, जिसे पश्चिमी दुनिया ने बहुत बाद में विश्लेषणात्मक दर्शन के युग में प्राप्त किया(राधाकृष्णन, 2015) ।

वर्तमान वैज्ञानिक संदर्भ में, आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता(Artificial Intelligence), मशीन लर्निंग, और विधिक न्यायशास्त्र में न्याय-दर्शन के सिद्धांतों का सफल अनुप्रयोग हो रहा है । ए.आई. प्रणालियों में भ्रामक सूचनाओं को दूर करने और सटीक निष्कर्ष निकालने के लिए नव्य-न्याय की 'व्याप्ति' की अवधारणा एक 'संज्ञानात्मक वास्तुकला' के रूप में कार्य कर रही है । इसी प्रकार, न्यायिक प्रणाली में साक्ष्यों का मूल्यांकन करने और विरोधी के कुतर्कों का खंडन करने में 'वाद-विधि' और हेत्वाभास का ज्ञान, वकीलों और न्यायाधीशों के लिए अत्यधिक उपादेय

सिद्ध हो रहा है(परासें, 2024) ।

निष्कर्षतः, पाश्चात्य तर्क-त्रुटियों और न्याय-दर्शन के 'हेत्वाभास' का यह आलोचनात्मक विश्लेषण इस तथ्य की अकाट्य पुष्टि करता है कि ज्ञानमीमांसा के क्षेत्र में न्याय-शास्त्र एक वैश्विक और कालजयी धरोहर है । ज्ञान को केवल सैद्धांतिक रूप से सत्य मान लेना पर्याप्त नहीं है; वह सत्य तार्किक रूप से प्रमाणित, दोषरहित और मानव मात्र के अंतिम कल्याण(निःश्रेयस) के प्रति उन्मुख होना चाहिए—यही न्याय-दर्शन का सबसे प्रखर और शाश्वत दार्शनिक संदेश है ।

संदर्भ सूची :

1. गौतम, अक्षपाद. *न्यायसूत्र.* चौखम्बा विद्या भवन, 2003.
2. कोपी, इरविंग एम.(Copi, Irving M.). *तर्कशास्त्र का परिचय.* (अनुवाद: संगम लाल पाण्डेय), 2020.
3. गंगेश उपाध्याय. *तत्त्वचिन्तामणि.* (संपादक: कामख्यानाथ तर्कवागीश), एशियाटिक सोसाइटी, 1927.
4. तिवारी, के. एन. *तर्कशास्त्र परिचय.* मोतीलाल बनारसीदास, 2019.
5. धिलेबन, जे. और जे. थिरुमल. "द कम्पेयर एंड कॉन्ट्राडिक्शन ऑफ न्याय एंड अरिस्टोटेलियन लॉजिकल फैलेसीज". *जर्नल ऑफ इमर्जिंग टेक्नोलॉजीज एंड इनोवेटिव रिसर्च,* वॉल्यूम 6, इश्यू 6, 2019.
6. पंचानन, विश्वनाथ. *न्यायसिद्धान्तमुक्तावली.* चौखम्बा सुर भारती, 1989.
7. परासें, मोहन. "न्याय इन लीगल रीजनिंग एंड आर्ग्यूमेंटेशन". *भारतीय ज्यूरिस्प्रूडेंस,* किताबवाले, 2024.
8. बाला, मुकुल. "न्याय लॉजिक एंड वेस्टर्न एपिस्टेमोलॉजी: टुवर्ड्स ए कम्पैरेटिव थ्योरी ऑफ नॉलेज". *इंटरनेशनल जर्नल फॉर मल्टीडिसिप्लिनरी रिसर्च,* वॉल्यूम 8, इश्यू 1, 2026.
9. भट्ट, जयंत. *न्यायमंजरी.* (संपादक: गौरीनाथ शास्त्री), 1983.
10. मतिलाल, बी. के. (Matilal, B.K.). *द कैरेक्टर ऑफ लॉजिक इन इंडिया.* स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस, 1998.
11. मोहंती, जितेन्द्रनाथ. *गंगेश थ्योरी ऑफ ट्रुथ.* मोतीलाल बनारसीदास, 1989.
12. राधाकृष्णन, एस. *भारतीय दर्शन (भाग 2).* राजपाल एंड सन्स, 2015.
13. वात्स्यायन. *न्यायभाष्य.* (अनुवाद: देवीप्रसाद चट्टोपाध्याय), इंडियन स्टडीज, 1967.
14. विद्याभूषण, सतीश चंद्र. *हिस्ट्री ऑफ इंडियन लॉजिक.* कलकत्ता यूनिवर्सिटी, 1921.
15. शर्मा, ब्रजनारायण. *भारतीय दर्शन में अनुमान.* मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, 1973.
16. शास्त्री, उदयवीर. *न्याय दर्शन (विद्योदय भाष्य).* विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द, 1990.
17. सिंह, सकठा प्रसाद. *आधुनिक तर्कशास्त्र.* बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2015.
18. झा, गंगानाथ. *द न्याय-सूत्रास ऑफ गौतम.* मोतीलाल बनारसीदास, 1999.

•